अध्याय उनचासवाँ

॥श्री गणेशाय नमः॥ श्री सरस्वत्यै नमः॥ श्री सिद्धारूढ़ाय नमः॥

"हे भक्तों को सँभालने वाले भक्तपालक, आपकी भक्ति करने वालों को आप अभय दीजिए। हे कृपालु, उनके मन की विषयोपभोगों की कामनाएँ नष्ट करके उन्हें ज्ञान दीजिए, उन्हें षड्रिपुओं से लगने वाला भय नष्ट करके, स्वरूप (आत्मा) में लीन होने दीजिए तथा भक्तों के साथ मुझे भी आपके चरणों में एकरूप कीजिए।"

श्रीसिद्धारूढ़जी केवल भक्तों के लिए हुबली में रहे। हे सतगुरुनाथ, आपकी कृपालुता से सभी लोगों में आपकी महिमा फैल गयी। आपकी पुण्यदायक महिमा का चिंतन करने से हृदय में शांति स्थापित होकर चित्त निर्मल होता है तथा मन प्रसन्न होता है। अनंत जन्मों में किए गए कर्मों का संचय होने के कारण अशुद्ध हुआ चित्त, आपकी जीवनी का पठण करने से पल भर में धुल जाता है। ऐसी परम पवित्र आपकी जीवनी भक्तों के लिए एक खजाना ही है; जिसे सुनने से हृदय में आनंद भरकर मन तुर्या अवस्था में पहुँचता है। ऐसी स्थिति में गुरुदेव का रूप हृदय में प्रकट होता है तथा वे गुरु महाराज ज्ञान प्रदान करते हैं, तो फिर कौन करें वेद वेदांतों का पठण? अज्ञानी हुए छोटे शिशु को, उसे किसी भी प्रकार के कष्ट पहुँचाए बगैर उसकी कृपालु माता तृप्त करती है, परंतु वही शिशु बड़ा होकर सज्ञान होने पर माता उसके पालन की उतनी चिंता नहीं करती तथा उसे अपना पेट स्वयं पालना पड़ता है। उसी प्रकार भोले भक्तों ने सतगुरुजी की चरणों में शरण लेने के पश्चात, वे उन्हें ज्ञान प्रदान करते हैं तथा ब्रह्म सुख की अनुभूति कराते हैं, परंतु जो स्वयं अपने आप को ज्ञानी समझते हैं, उनका ग़रूर उन्हें पूर्ण रूप से निगल जाता है और जिन्हें सतगुरुजी की जीवनी सुनना तक पसंद नहीं वे निश्चित रूप से अधोगति जाते हैं। इस प्रकार, इस अभिमान ने आज तक अनेक लोगों को निगलकर पथ भ्रष्ट किया है, उनके लक्षण ये हैं की, वे अपने आप को ज्ञानी तथा सतगुरुजी को अज्ञानी समझते हैं। वे स्वयं सतगुरुजी का आदर तो करते ही नहीं, ऊपर से दूसरे कोई सतगुरुजी का आदर करते हैं तो वे सह नहीं पाते, इससे अधिक दुर्बुद्धि नहीं हो सकती, ऐसे मनुष्य निश्चित रूप से नरक भोगते हैं। ऐसे दुष्टों के दुर्गुणों की

अगर हम चर्चा करें, तो हम ही दारुण पापी हो जाएँगे, इसीलिए सिद्धजी नाम लेकर नामस्मरण करना चाहिए।

अस्तु। अब श्रोतागण निश्चित ही जीवनी सुनने की कामना कर रहे होंगे, इसलिए कहानी बयान करता हूँ। दयालु सिद्धारूढ़जी सिद्धाश्रम में निवास करते समय, अनेक भक्तगण समारोह के समय उन्हें पालकी में बिठाकर पूरे शहर में उनकी शोभायात्रा निकालते थे, जिसे देखकर कुछ दुष्ट लोग मन ही मन जलते थे। अस्तु। हुबली में ही रहने वाला बसप्पा उप्पिन नाम का एक लिंगायत सतगुरुजी का श्रेष्ठ भक्त था, महाराज पर उसकी असीम भक्ति होने के कारण वह प्रतिदिन उनके दर्शन करने जाता था। उसके घर के समीप ही एक प्रसिद्ध "रुद्राक्ष" नाम का मठ था, सतगुरुजी को वहीं आमंत्रित करके उनकी पूजा करने की उसे तीव्र मनोकामना हुई। प्रति वर्ष बसप्पा महाशिवरात्री के पवित्र दिन समारोह के लिए मठ जाता था। उसी मठ में सतगुरुजी को एक आसन पर आदरसहित बिठाकर वह उनकी भक्ति भाव से पूजा करता था। यह क्रम अनेक वर्षों तक चलता आया हुआ देखकर एक लिंगायत के मन में मत्सर की भावना जाग उठी, वह मन ही मन बोला, "यह सिद्धारूढ़जी गले में सभी लिंगायत लोगों के समान शिवलिंग धारण नहीं करते, ऊपर से इस मठ आकर मठ को अपवित्र करते हैं।" उसपर उसने दूसरे लिंगायतों को जाकर कहा की रुद्राक्ष मठ में सिद्धारूढ़जी का आना जाना होने के कारण अपने लिंगायत (वीरशैव) धर्म अपवित्र होता है; इसलिए उन्हें मठ नहीं आने देना चाहिए।

महाशिवरात्री का समारोह आते ही प्रतिवर्ष के समान बसप्पा ने समारोह की तैयारी की, उस समय दुर्जन वहाँ पहुँचे और उसे धमकाकर बोले, "बसप्पा, इसके पश्चात हम मठ में सिद्धारूढ़जी की पूजा होने नहीं देंगे। अगर तुम उस भवी को यहाँ ले आओगे तो हम उसे यहाँ से जिन्दा जाने नहीं देंगे।" यह सुनकर बसप्पा अत्यंत दुखी हुआ, उसने जाकर दुर्जनों के मनसूबे की सिद्धजी को खबर दी। तब सिद्धजी ने कहा, "मेरे मठ जाने से उन लोगों को दुख होता है, तो मैं रुद्राक्ष मठ नहीं जाऊँगा।" इतने में सरकारी अधिकारी वहाँ पहुँचा और उसने कहा, "आप स्वामीजी की रुद्राक्ष मठ में अवश्य पूजा कीजिए, जो भी कोई आप की पूजा में बाधा उत्पन्न करेगा, उस पर मैं यथायोग्य कार्रवाई करूँगा।"

यह सुनकर बसप्पा अत्यंत आनंदित हुआ। उस सरकारी अधिकारी ने फौज के सैनिकों को उसके साथ लाने के कारण, रुद्राक्ष मठ में समारोह तथा विधिवत पूजा यथाविधि संपन्न हो गए। सशस्त्र सैनिकों को देखते ही दुर्जन जगह जगह छुप गए, जिससे वैभव पूर्ण रीति से पूजा संपन्न हुई और सभी सिद्धाश्रम वापस लौटे। उनके सारे प्रयत्न विफल होने के कारण जलते हुए दुर्जन कवदी मठ (दूसरा मठ) में इकट्ठा हुए और अगली योजना आँकने के प्रति विचार करने लगे। उनमें से एक ने कहा, "उस भवी को हम नहीं छोड़ेंगे। उसे पकड़कर मार डालेंगे। अगर इसे जिन्दा छोड़ दिया तो वह अपने धर्म का पूर्णत: नाश करेगा। मूर्ख लिंगायत लोगों को लुभाकर उसने सचमुच ही धर्मनाश किया है। अगर हम लोग ये सब देखते रह गए तो संत बसवण्णा हम पर क्रोधित होंगे।" उसपर दूसरे ने कहा, "उसे मारने के लिए हमें अधिक समय नहीं लगेगा, क्योंकि कोई भी उसे भोजन के लिए आमंत्रित करता है, तो वह उसके घर जाता है।" तीसरे ने कहा, "अगर ऐसा है, तो मैं स्वयं उसका भक्त हो जाऊँगा! उसे मेरे घर भोजन के लिए आमंत्रित करूँगा, उसके पश्चात उसे कवदी मठ लाकर हम अपनी मनोकामना पूरी कराएँगे।" उसकी बातें सुनकर वे सभी आनंदित हुए और बोले, "इसके पश्चात 'आरूढ़' यह नाम ही हम नामशेष कर देंगे।" एक दिन शाम के समय एक लिंगायत स्वामीजी के पास आया और सद्भाव से उन्हे प्रणाम करके मधुर शब्दों में उसने कहा, "हे महाप्रभु सतगुरुजी, मैं आप की चरणों में दीन होकर प्रार्थना करता हूँ। इस दीन पर कृपा करके आज हमारे घर आप भोजन के लिए आईए।" सिद्धजी ने कहा, "मैं रात के समय भोजन नहीं करता, इसलिए कल सुबह तुम्हारे घर आऊँगा।" उसपर गद्गद् होकर उसने कहा, "अभी इसी समय आप की पूजा करने की, मेरे घर के सभी सदस्यों की मनोकामना है, पूजा के लिए अधिक समय की भी आवश्यकता नहीं है। पूजा के पश्चात अल्प प्रसाद लेकर आप तुरंत वापस मठ लौट आईए। आज अगर आप हमारे घर नहीं आए तो हमारे घर के सदस्यों में से कोई भी भोजन नहीं करेगा। इसलिए, इस दीन पर कृपा कीजिए।" उसने इन करुण शब्दों में प्रार्थना करते ही उस दुष्ट का मनसूबा जाने बगैर, वह भोलानाथ उसके साथ निकल पड़ा। उस समय मठ में जो अन्य शिष्य थे, उनमें से किसी को भी भोजन के लिए आमंत्रित किए बिना,

केवल स्वामीजी को साथ लेकर वह लिंगायत निकल गया। वह स्वामीजी को कवदी मठ ले गया, वहाँ उन्हें एक कक्ष में बिठाकर "अभी आता हूँ" कहकर, वह दरवाजे को बाहर से ताला लगाकर चला गया। सतगुरुजी को कक्ष में बंद किया हुआ देखकर सभी दुर्जनों को बहुत आनंद हुआ, उन्होंने कहा की रात होते ही उस भवी को यमपुरी भेज देंगे। मध्यरात्रि होने की प्रतिक्षा करते हुए वे सभी बाहर चैन से बैठे हुए थे; अंदर बैठे हुए सतगुरुजी ने ज्ञान दृष्टि से सब कुछ देख लिया। सतगुरुजी मन ही मन विचार करने लगे की अब इन मूर्खों का क्या करें, ये इतने अज्ञानी हैं की इन्हें इतना भी समझ में नहीं आ रहा है की वे जो कुछ करने जा रहे हैं, उससे केवल उन्ही को हानि पहुँचने वाली है। इन्हें चमत्कार दिखाकर उनके मन भक्ति मार्ग की ओर मोड़ने चाहिए, तभी मेरा अवतार सार्थ होगा। उसके पश्चात कक्ष में बैठे सिद्धारूढ़ स्वामीजी आत्मध्यान में तल्लीन हो गए, परंतु सिद्धाश्रम में होने वाले उनके शिष्यों को उनकी चिंता हो रही थी। सतगुरुजी वापस लौटने की प्रतिक्षा करते करते अधिक समय निकल जाने के पश्चात चिंतित होकर वे उन्हें ढूंढ़ने बस्ती में गए।

मार्ग में मिले हुए लोगों से जब उन्होंने "क्या आप ने सिद्धारूढ़ स्वामीजी को देखा हैं?" ऐसा प्रश्न किया, तब लोगों ने कहा की उन्होंने सिद्धजी को देखा नहीं, जिसे सुनकर शिष्य मन ही मन तड़पने लगे। वे कहने लगे, "हे सतगुरुनाथ, आपकी खोज में हम कहाँ जाएँ? हम व्यर्थ ही आपकी खोज कर रहे हैं। दयालु गुरुनाथजी कृपा करके हमें आकर मिलिए। हमने आपको अनेक लोगों के घरों में, पहाड़, वन-उपवन, नदी-नालों के किनारों पर चारो ओर ढूढ़ा, परंतु कहीं भी हमें आपका सुराग नहीं मिल पाया। आप ही अगर कृपा करें तो हमें आपका सुराग मिल सकता है, आपको चारो ओर खोजकर हम थक गए हैं। हे भगवान, आप किस के घर में फँसे हुए हैं? हे दयालु सतगुरुनाथ, इन अनाथों पर दया कीजिए तथा जल्द ही जल्द इन भक्तों से आकर मिलिए।" खोजते खोजते सारा हुबली शहर घूमने के पश्चात सतगुरुजी कहीं भी दिखाई न देने के कारण, थके हुए शिष्य एक कुँवे के पास बैठकर सतगुरुजी की बार बार प्रार्थना करने लगे। उनका गला रुंध जाने के कारण उनकी आँखों से अविरत अश्रुधाराएँ बह रही थी। सतगुरुजी के सद्‌गुण तथा उनका स्नेह प्रकट करने वाली अनेक

स्मृतियों को मन में लाते हुए वे अंधेरे में बैठे रहे। इतने में उन्होंने सामने प्रकाश की झकझकाहट देखी, जिसमें उन्हें सतगुरुजी दिखाई पड़े। तत्काल दौड़ते हुए जाकर उन्होंने सतगुरुजी को कसकर गले लगाया। सतगुरुजी के दोनों हाथ थामकर वे उन्हें सिद्धाश्रम ले गए और उन्हें पूछा, "महाराज, ये आप ने क्या किया? चारो ओर खोजने के पश्चात भी हमें आपका सुराग नहीं मिल पाया!" सिद्धजी ने कहा, "उस मनुष्य ने मुझे एक कक्ष में बिठाकर दरवाजा बाहर से बंद कर लिया, इसलिए, मैं वहीं बैठकर चिंतन में लीन हो गया। इस प्रकार ध्यानस्थ होने के पश्चात, आर्त होकर की हुई प्रार्थना मुझे सुनाई पड़ी, इसलिए तुरंत उठकर मैं आप लोगों के पास चला आया।" यह सुनकर शिष्य कहने लगे की न जाने वे दुष्ट क्या करने वाले थे! ये तो हमारा सौभाग्य ही है की हमारा यह अनमोल खजाना हमें फिर से वापस मिल गया।

इधर कवदी मठ में दुर्जन मध्यरात्रि होने की प्रतिक्षा करते हुए बैठे थे, उनके मन व्देष बुद्धि से पूर्णत: भर जाने के कारण, केवल सतगुरुजी के विचार की ही उन्हें धुन लगी थी। वे मन ही मन कह रहे थे की एकबार नीरव रात होते ही हम कक्ष के भीतर जाएँगे, सिद्धजी के मुख में कपड़ा ठूंसकर उनकी अच्छी तरह से "पूजा" करेंगे। मध्यरात्रि का समय हुआ, शहर के लोगों का शोरगुल थम गया, नीरव शांति फैल गयी। दुर्जन चुपके से उठे और उन्होंने धीरे से कक्ष का दरवाजा खोला, दिया हाथ में लेकर अंदर देखने लगे, परंतु सिद्धनाथजी भीतर दिखाई न पड़े! हर एक दुर्जन हाथ में लाठी लिए कक्ष में चारो ओर खोजकर देख रहा था; एक दुर्जन "इस कोने में सिद्धजी हैं" कहते हुए वहाँ भागता हुआ जाता तो दूसरा "नहीं, वे तो उस कोने में हैं," कहते हुए उस कोने की ओर भाग जाता। इस प्रकार सभी को मानो सिद्धजी का ध्यान चढ़ने के कारण उन्हें चारो ओर सिद्धजी का ही चेहरा दिखाई पड़ने लगा और वे देहभान खो बैठे। एक दुर्जन दूसरे से कहता की, "ये देख यहाँ सिद्धजी हैं," और उसकी बात सुनकर दूसरा तेजी से उस जगह पहुँचकर लाठी से उस स्थान पर मारना आरंभ कर देता। उसके पश्चात अंधेरे में ही "सिद्धजी, सिद्धजी" कहते हुए वे एक दूसरे को लाठी से मारने लगे। जिन्होंने लाठी के प्रहार सहे थे वे सभी जोर जोर

से चिल्लाने के कारण सभी पड़ोसी हड़बड़ी से उठकर वहाँ क्या हुआ है, यह देखने के लिए इकट्ठा हुए।

पड़ोसियों ने देखा की हाथ में लाठियाँ लेकर छह आदमी पागलों के समान उत्तेजित होकर "सिद्ध, सिद्ध" कहते हुए इधर से उधर और उधर से इधर भाग रहे थे तथा एक दूसरे को लाठी से पीट रहे थे। उसके पश्चात सभी पड़ोसियों ने मिलकर उन छह दुर्जनों को पकड़ा, उन्हें बाहर ले आए और उनकी ओर देखकर सभी जोर जोर से हँसने लगे। पड़ोसियों ने कहा, "अरे पागलों! ’सिद्ध, सिद्ध’ कहते हुए आप लोग यहाँ चिल्ला रहे हैं, परंतु सिद्धारूढ़ स्वामीजी तो सिद्धाश्रम में चैन की नींद सो रहे हैं। हम लोग पागलपन उतारने के लिए आप को अवश्य वहाँ ले जाएँगे," उनकी बातें सुनकर सभी लोग ठहाके मारकर हँसने लगे। पड़ोसियों की बातें सुनकर दुर्जन थोड़े से सावधान हो गए और जो कुछ भी हुआ उसका ज्ञान होते ही लज्जा से वहाँ से भाग खड़े हुए। उसके पश्चात पड़ोसी अपने अपने घर लौटे। उस दिन से वे छह दुर्जन सिद्धजी के भक्त बन गए, उन्होंने जाकर सिद्धनाथजी को उस रात जो कुछ भी हुआ वह पूर्ण रूप से बयान किया। जिसने सिद्धजी का घात करने के लिए उन छह दुर्जनों को प्रेरित किया था, उसके सारे प्रयत्न विफल हुए देखकर वह मन ही मन बहुत जल रहा था। उसने एक गरीब महिला को बुलाकर उसे पैसे देकर, वह जो कुछ भी कहेगा उस काम को करने के लिए उसे प्रेरित किया। उस दुर्जन ने उसे कहा, "बहन, तुम विविध प्रकार के पकवान बनाकर उनमें उग्र विष मिलाकर, वे पकवान सिद्धजी को दे दो। वे पकवान खाते ही सिद्धजी मर जाएँगे, अगर तुम्हारे पकवान खाकर वे मर गए तो मैं तुम्हें बहुत सारा धन दे दूँगा।" यह सुनते ही वह गरीब महिला धन के लालच से आनंदित हो गयी। उस दिन से वह महिला प्रतिदिन सिद्धनाथजी से जाकर मिलने लगी, उसके पश्चात एक दिन उसने अत्यंत स्वादिष्ट पकवान बनाकर उन में विष मिलाया। वे पकवान लेकर वह महिला सिद्धाश्रम पहुँची तथा सिद्धनाथजी से मिलकर, मन में पूरी तरह से छल की भावना होने के बावजूद भी ऊपरी तौर पर मधुर शब्दों में उसने उन्हें कहा, "हे सिद्धारूढ़ महाराज, आपके लिए तैयार किए हुए इन स्वादिष्ट पकवानों का स्वाद लेकर आप मुझे कृतकृत्य कीजिए।" उसके ये स्नेहभरे बोल सुनकर सतगुरुजी ने

कहा, "बहनजी, मैं अभी एक भक्त के घर में भोजन करके बाहर से लौटा हूँ।" परंतु उसने बहुत आग्रह करने के कारण सिद्धजी ने उन पकवानों का केवल एक ही ग्रास मुख में डाला और उस भोजन में विष मिलाया हुआ है यह जानकर उसे कहा, "बहनजी, अब आप अपने घर लौट जाईए। परंतु यह भोजन किसी भी प्राणी को न देकर जमीन में गाड़ दीजिए, बस।" उनके ये शब्द सुनकर उस महिला का चेहरा भय से विवर्ण हो गया और वह तेजी से वहाँ से अपने घर भाग गयी; उसके पश्चात वह कभी भी मठ नहीं लौटी।

उस दिन से वह अत्यंत भयभीत हो गयी, दिनरात उसकी आँखों के सामने उसे सिद्धनाथजी दिखाई देने लगे; उसका सारा विश्व ही सिद्धमय हो गया, वह पूर्ण रूप से भय ग्रस्त हो गयी। जहाँ जहाँ भी उसकी दृष्टि जाती वहाँ वहाँ उसे भयंकर रूप में सिद्धनाथजी दिखाई देने लगे। घरबार, लोग, चंद्र तारे आदि सारी वस्तुओं की जगह उसे सतगुरुजी दिखाई देने लगे। इस प्रकार पंद्रह दिन उस महीना ने भय का दारुण दुख झेला और सोलहवे दिन "सिद्धनाथ, सिद्धनाथ" कहते हुए प्राण त्याग दिए। सिद्धारूढ़जी का नाम मुख से लेते हुए तथा उन्हीका रूप चारो ओर देखते हुए उसने प्राण त्याग देने के कारण उस महिला की आत्मा सतगुरुजी में विलीन हो गयी; परंतु ये भी उतना ही सच है की उसे दारुण दुख झेलना पड़ा। सर्वज्ञ होने वाले सतगुरुजी मन ही मन स्वयं की स्थिति के प्रति आनंदित थे। वे मन ही मन विचार कर रहे थे की, ये सच है की मेरे शरीर पर विष प्रयोग हुआ है परंतु उससे होने वाली पीड़ा मुझे लोगों के हित के लिए सहनी ही पड़ेगी। लोगों को विषयोपभोगों से सुख मिलता है, परंतु आगे चलकर उन्हें विविध प्रकार के दुख भोगने पड़ते हैं, अगर मैं उनके दुख झेल लूँ तो उन्हें परलोक में सुख प्राप्ति होगी। जिस प्रकार मटमैले जल में फिटकिरी का छोटा टुकड़ा डालने से, जल में होने वाली तलछट तल में स्थिर हो जाती है, उसी प्रकार विष प्रयोग के निमित्तकारण जगत के दुख सिद्धारूढ़जी ने अपनी ओर खींच लिए और स्वयं दुख झेलकर लोगों को सुखी किया। जो मुमुक्षु जन उनके पास आते थे उन्हें तप आदि पारमार्थिक उपासना करते समय विविध प्रकार के दुख तथा संकटों को झेलकर आत्मप्राप्ति करनी पड़ती थी, परंतु सतगुरुजी

दयालु होने के कारण ऐसे मुमुक्षु लोगों के हित के लिए वे स्वयं दुख झेल रहे थे ताकि गुरुकृपा से उन्हें चैन से परमार्थ की प्राप्ति हो सके।

इस प्रकार मन ही मन विचार करते हुए सतगुरुजी सो गए, दूसरे दिन उठकर देखा तो उनके शरीर पर असंख्य फोड़े आए हुए दिखाई पड़े। उनके शरीर में भयानक जलन हो रही थी, मानो उनके पूर्ण शरीर पर अग्नि ने कब्जा कर लिया हो। अनेक प्रकार की व्याधियाँ उत्पन्न हुई, वृषण सूजकर भयानक वेदना होने के कारण गुरुदेव कराहने लगे। जिव्हा सूजने के कारण, ऐसा लग रहा था की जैसे मुँह ही भर गया हो। गला सूजने के कारण, भोजन का एक ग्रास भी निगला नहीं जा रहा था। आँखें सूजकर लाल होने के कारण गुरुदेवजी का रूप भीषण हो गया था। सतगुरुजी के शरीर को हुई विविध प्रकार की व्याधियाँ देखकर भयभीत हुए भक्तों ने भागदौड़ शुरु की; कोई वैद्य को जाकर बुला लाया और उससे सतगुरुजी के स्वास्थ्य का परीक्षण करवाया। सतगुरुजी के स्वास्थ्य की पूर्ण रूप से परीक्षा करने के उपरांत वैद्य ने भक्तों से कहा की इस प्रकार की व्याधियों पर किसी भी दवा का परिणाम न होने के कारण सतगुरुजी बच नहीं पाएँगे; वैद्य का निर्णय सुनकर भक्तगण दुख से मन ही मन तड़पने लगे। चारो ओर हाहाकार मचा, महिलाएँ आक्रोश करती हुई जोर जोर से रोने लगी, अतीव दुख से कुछ लोग बेहोश होकर जमीन पर गिर पड़े। सभी भक्तों ने धीरज खो दिया और कहने लगे, "हो सकता है हमारा कर्म ही अत्यंत घोर हो, इसीलिए दया सागर सतगुरुजी हमें छोड़कर जा रहे हैं। हे करुणाकर ईश्वर, हमें इस दुख सागर में मत धकेलिए, हमारे सतगुरुजी को पूर्ण रूप से तंदुरुस्त बनाकर हमें हमारे गुरुदेव फिर से दे दीजिए। अगर सतगुरुजी ने देहत्याग किया तो हम सभी की क्या स्थिति होगी? कौन संकट के समय हमारी मदद करेगा? दूसरा कौन आकर विपत्तियों में हमारी रक्षा करेगा? हे ईश्वर, जल्दी आईए! पिताजी के समान होने वाले हमारे सतगुरुजी की रक्षा कीजिए, वर्ना हम सभी को भी उनके साथ ही ले जाईए, उनके बिना हम नहीं जी पाएँगे, वे हमें छोड़कर गए तो हम कैसे जिन्दा रह पाएँगे?"

इस प्रकार विविध प्रकार से भक्तों ने ईश्वर से करुणा प्राप्त करने के लिए प्रार्थना की; उनकी तड़प देखकर सतगुरुजी ने हाथ से ही "भयभीत मत

होईए, शांत हो जाईए," इस अर्थ को सूचित करने वाला इशारा किया हुआ देखकर सभी को थोड़ा चैन आया। वे कहने लगे की सतगुरुजी ने स्वयं ही अभय दिया है, इस क्षण वे स्वयं ही देवाधिदेव ईश्वर होकर उन्होंने हमारा दुख देखा है और वे हमें प्रसन्न हो गए। इस प्रकार पंद्रह दिन दिनरात जागकर, अपने घर न लौटते हुए भक्तगण सतगुरुजी के साथ बैठे रहे। इतना दुख तथा पीड़ा सहते हुए भी सतगुरुजी का चेहरा शांत दिखाई दे रहा था। वे कराहते नहीं थे, परंतु बोल न पाने के कारण, हाथ से ही इशारा करके वे सभी भक्तों को शांत हो जाने के लिए सूचित कर रहे थे। ऐसे घोर संकट के समय भी शांति तथा धीरता से सब कुछ सहने वाले सतगुरुजी को देखकर भक्तगण सोचते थे की ये सचमुच मूर्तिमान शांतता ही होंगे, क्योंकि ऐसे असहनीय कष्टों में भी इस प्रकार की अपूर्व शांति केवल असंभव ही लगती है। पीड़ा सहते हुए सतगुरुजी शांति से रहते हुए देखकर भक्तगण आँसू बहा रहे थे। पंद्रह दिनों के पश्चात सारे फोडे सूख गए, जीभ की सूजन कम होकर वह पूर्ववत् हुई तथा आँखों की सूजन और लाली जाकर वे निर्मल हुई। सतगुरुजी की शरीर की स्थिति में हुआ बदलाव देखकर भक्तों ने एकसाथ मिलकर हर्ष से उनकी जयजयकार की, उनकी आरती उतारी तथा आह्लादित हुए सभी ने उनके नाम का जोर जोर से जयघोष किया। इस प्रकार दुर्जनों ने विविध अपाय करने के बावजूद भी दयालु तथा भक्तों को तारने वाले सतगुरुजी उत्तम उपाय करते थे।

अब इस कहानी का गंभीर गूढ़ार्थ भरा लक्ष्यार्थ सुनिए। काम, क्रोध आदि षड्रिपुओं को ही छह दुर्जन समझें; सिद्धगुरुजी यही परिपूर्ण आत्मा समझें। उस आत्मा का प्रकटित होना, यही वह समारोह समझें। भक्त यानी सद्‌गुण, जो आत्मा को प्रकटित करने में लगे थे, परंतु षड्रिपु आड़े आकर आत्मा को ही मारने की योजना बना रहे थे। षड्रिपुओं का आत्मा को प्रकटित होने से रोकना, इसी को श्रोतागण आत्मा को मारना ऐसा समझें। उसके पश्चात सरकारी अधिकारी के रूप में आए हुए ईश्वर की सहायता से आत्मा प्रकटित होना आरंभ हो गया। कवदी मठ को अज्ञान का प्रतीक समझें, वहीं षड्रिपु इकट्ठा होकर आत्मा को मारकर उनकी मनोकामना पूरी कराने के लिए बैठे हुए थे। काम (षड्रिपुओं में से एक) आत्मा के पास गया और विविध उपाय करके उसने

आत्मा को अज्ञान में बंद कर दिया, जिससे षड्रिपुओं को हर्ष हुआ। षड्रिपुओं ने तय किया था की सारी सद्वृत्तियों की गड़बड़ी थम जाने के बाद वे आत्मा को नष्ट कर देंगे। मुमुक्षुओं के रूप में होने वाले शिष्यों ने आत्मा को घरबार, नदी नाले, पहाडों पर चारो ओर खोजा, परंतु उन्हें आत्मा मिली नहीं, उसपर वे सभी एक जगह बैठकर आँसू बहाते हुए आत्मा के गुणों का बयान करते हुए उसकी प्रार्थना करने लगे। उसपर आत्मा प्रकट हुई और उन सभी ने एकरूपता की भावना से उसे गले लगाया तथा उसे हृदय रूपी मठ ले गए। चारो ओर आनंद फैल गया। इधर अज्ञान में बैठे हुए षड्रिपु, आत्मा का क्या किया जाए, यही सोचते रहने के कारण वे आत्मा का चिंतन करने लगे, जिससे उन्हें चारो ओर आत्मा ही दिखाई देने लगी। काम, क्रोध रूपी षड्रिपुओं ने आत्मा समझकर एक दूसरे को मारना शुरु करने के कारण सद्वृत्तियाँ जागृत हो गयी और उन्होंने सभी षड्रिपुओं को पकड़ लिया। सद्वृत्तियों ने देखने के कारण, लज्जा से षड्रिपु भाग गए, उसके पश्चात सत्संग करके वे आत्मा के भक्त बन गए। जिस अव्यक्त ने आत्मा का घात करने के लिए षड्रिपुओं से कार्य करवाया था, उसी ने गरीब महिला के रूप में होने वाली कुबुद्धि को बुलाकर उसके हाथ में विष दिया। स्थूल तथा सूक्ष्म रूप में होने वाली विषयोपभोगों की कामनाएँ, यही वह विष, जब कुबुद्धि आत्मा को देने का प्रयान करने लगी तब उसने कहा, "मैं हमेशा पूर्ण तथा तृप्त ही हूँ, क्यों मुझे ये व्दैत बुद्धि के पकवान खिला रही हो?" परंतु उसने भाव शक्ति से आत्मा को विषयोपभोगों का ग्रास खिलाने से, पश्चात्ताप होकर आत्मा का चिंतन करती हुई वह आत्मा में ही विलीन हो गयी। पंद्रह दिनों में एक एक करके पंद्रह अंश नष्ट होकर कुबुद्धि का विनाश हुआ। परंतु इधर आत्मा को सांसारिक ज्वालाओं की पीड़ा शुरु हो गयी। कामनाओं के रूप में फोड़े आ गए, वासना रूपी अग्नि से शरीर व्याप्त हो गया, आत्मा को छह विकार हो गए, जिससे उसे दारुण दुख हो गया। हालाँकि बाहर से दुख तथा पीड़ा दिखाई पड़ रही थी, अंदर से आत्मा शांत तथा निर्विकार थी। सद्गुणों को अतीव दुख होने के कारण उन्होंने आत्मा का दुख निवारण करने के लिए प्रयास किए, उसपर आत्मा ने ही उन्हें अभय दिया। पाँच प्राण तथा दस इंद्रियों को जीतकर निर्भय हुई आत्मा प्रकाशमान होकर

जगमगाने लगी। सतगुरुनाथजी ही अभयदाता होकर उनके चरणों में शरण लेने से सांसारिक दुख का विनाश होता है और वे ज्ञान प्रदान करते हैं। अस्तु। जिसका श्रवण करने से सभी पाप भस्म हो जाते हैं, ऐसे इस श्री सिद्धारूढ़ कथामृत का मधुर सा यह उनचासवाँ अध्याय श्री शिवदास श्री सिद्धारूढ़ स्वामीजी के चरणों में अर्पण करते हैं। सबका कल्याण हो।

॥ श्री गुरुसिद्धारूढ़चरणारविंदार्पणमस्तु ॥